‘कागज़ी है पैरहन’ में विद्रोही स्वर’

इशरत खान

इस्मत चुग़ताई वर्तमान युग की लोकप्रिय मुस्लिम लेखिका हैं। उनकी लोकप्रियता उर्दू साहित्य के साथ-साथ हिन्दी पाठकों के बीच भी बनी हुई है। भारतीय समाज के रूढ़िवादी जीवन-मूल्यों और घिसी-पिटी परम्पराओं पर कड़ा प्रहार करते हुए उन्होंने एक नए समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पाठकों के मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि इतनी पैनी नज़र से अपने परिवेश को टटोलने और जीते जागते पात्रों को रचनेवाली लेखिका ने स्वयं का जीवन कैसे जिया होगा, उनके जीवन-मूल्य एवं सिद्धान्त क्या हैं? ...शायद पाठकों की इस जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने आपबीती ‘कागज़ी है पैरहन’ लिखी होगी।

इस आत्मकथा पर विचार करने के पूर्व इस्मत के जीवन एवं रचनाओं से परिचित होना जरूरी है...21 अगस्त 1925[1] में उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले में जन्मी इस्मत चुग़ताई एक अर्द्धसामन्तीय परिवार में पली-बढ़ीं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अलीगढ़ में हुई तथा बी.ए. बी. एड. आई. टी. कॉलेज (इज़ाबेला थाबन) लखनऊ से किया। आपने प्रारम्भ में जावरा (राजस्थान) बरेली (उत्तर प्रदेश) में अध्यापन कार्य भी किया और 1938 से लेखन-कार्य प्रारम्भ किया। इन्होंने कहानियों के साथ ही साथ उपन्यास भी लिखे हैं। आप फिल्मों से भी जुड़ी रही हैं। एम. एस. सथ्यू की मर्मस्पर्शी फिल्म ‘गर्महवा’ की कहानी लिखी। बाल फिल्म ‘जवाब आयेगा’ तथा अलीसरदार जाफरी पर बने वृत्तचित्र का निर्देशन भी किया है। इसी के साथ ‘जुनून’ फिल्म में ‘नानी’ की भूमिका भी की है। इस तरह उनका व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है। इस्मत जी को समय-समय पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आपको 1975 में ‘गालिब-ड्रामा पुरस्कार तथा उर्दू साहित्य के बहुमुखी योगदान के लिए ‘पद्मश्री’ से नवाज़ा गया।

ज़िद्दी (1941) टेढ़ी लकीर (1945), मासूम (1962), जंगली कबूतर (1967) [उपन्यास] एक बात [1942] दो हाथ [1955] [कहानी-संग्रह] इक-क़तरा-ए-खूं, मीर अनीस के मर्सियों और अन्य कृतित्व का अध्ययन], धानी बाँके [नाटक] आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। उर्दू की इस महान लेखिका, इस्मत ने 25 अक्टूबर 1991[2] को इस संसार से बिदा ली।

‘कागज़ी है पैरहन’, आपबीती, आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति की संवाहक मासिक पत्रिका ‘आजकल’ (उर्दू) (नई दिल्ली) में मार्च, 1979 से मई 1980 तक धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुई थी। इसमें, इनके सम्पूर्ण जीवन का लेखा-जोखा तो नहीं मिलता

लेकिन इसमें उन्होंने अपने बचपन से लेकर स्नातक स्तर तक के विद्यार्थी जीवन को यथार्थ रूप में शब्दबद्ध किया है। इस रचना का सर्जन 'गुब्बारे-कारवाँ', 'उन ब्याहताओं के नाम', 'तसादुम', 'अधूरी औरत', 'लोहे के चने', 'सोने का उगालदान', 'ताले', 'तालीमै निस्वाँ एक वबाल', 'जहन्नम', 'रौशनी-रौशनी-रौशनी' आदि कुल पन्द्रह शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। प्रस्तुत 'आपबीती इस्मत की बचपन की यादों से प्रारम्भ होती है और विद्यार्थी जीवन की एक न भूलनेवाली याद से समाप्त होती है। वे आई. टी. कॉलेज, लखनऊ से बी. ए. कर चुकी हैं। बिदाई का दृश्य है। सीनियर लड़कियां, जूनियरों को जलती हुई क़न्दीले देती हुई कहती हैं—"यह इल्म की शमा जो हमें, हमारी सीनियर बहनों ने थमाई थी, हम तुम्हें सौंपते हैं—"यह बुझने न पाए"।[3] अन्तिम वाक्य ही बहुत मार्मिक और भावपूर्ण है—

"बे-इख़्तियार लड़कियाँ फूटकर रो पड़ीं। प्रोफेसरों की आँखें भी नम हो गईं। उन क़ंदीलों की रौशनी आज तक दिमाग़ में महफ़ूज़ हैं।"[4] इसी के साथ इस्मत ने अपने जीवन के अविस्मरणीय क्षणों को इसमें सच्चाई के साथ संजोया है। तीस के दशक में पर्देदार कुलीन मुस्लिम परिवारों में एक लड़की के पढ़ने-लिखने में कितनी मुश्किलें आती होंगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। ये मुश्किलें ही 'काग़ज़ी हैं पैरहन' की मुख्य कथावस्तु बनी है। इसी थीम को इस्मत ने अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं द्वारा रेखाँकित करने का प्रयास किया है।

'काग़ज़ी है पैरहन' को पढ़कर हम आसानी से जान लेते हैं कि इस्मत को विद्रोहिणी लेखिका बनाने में उनके परिवार एवं परिवेश का विशेष योगदान रहा है। इसका परिचय ग्रन्थ के प्रारम्भ में 'गुबारे कारवाँ!'[i] शीर्षक में मिल जाता है। वस्तुतः इसके मूल में उनके बचपन का जीवन है जोकि अविस्मरणीय घटनाओं का दस्तावेज़ है। उन्होंने बचपन से ही समाज के शोषित और शोषक-जीवन को अपनी खुली आँखों से देखा था, जिसे कि आक़ा और नौकर के माध्यम से 'गुबारे-कारवाँ' शीर्षक के अन्तर्गत अभिव्यक्ति मिली है। इस्मत ने अपने समय के पीढ़ी-दर पीढ़ी नौकरों की स्थिति का यथार्थ अंकन किया है। उनके परिवार में भी कुछ इसी प्रकार के नौकर थे जो शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूपों से गुलाम बने हुए थे और वे पालतू कुत्तों की तरह वफादार भी होते थे। इस सन्दर्भ में वे लिखती हैं—"घरेलू नौकर से ज़्यादा कोई बदक़िस्मत और मजबूर तबक़ा![ii] नहीं। ख़ास तौर पर हिन्दुस्तान में, जहाँ बेकारी और ग़ुरबत ने एक 'कसीर तादाद[iii] को एक महदूद[iv] तबके का महकूम[v] और गुलाम बना रखा है। हमारे यहाँ चन्द ऐसे नौकर थे जो पुश्त-हा-पुश्त से हमारे ही ख़ानदान की ख़िदमत करते आए थे, जिस्म के साथ उनका ज़ेहन भी गुलाम बन चुका था। ये नौकर निहायत निकम्मे, ग़ब्बी[vi] और मक्कार थे। तंग आकर निकाल दिए जाते तो इधर-उधर धक्के खाकर फिर खूँटे पर लौट आते। बिलकुल पालतू कुत्तों की तरह से।[5]

इसीलिए उन्हें आक़ा और नौकर के निज़ाम से ही नफरत हो गई। शोषित वर्ग की पक्षधर इस्मत ने अपने अधिकांश पात्रों को इन्हीं के बीच से चुना है। इसमें सहजता, स्वाभाविकता और यथार्थता का ऐसा अनूठा संगम है कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इस्मत स्वयं लिखती हैं—"मेरी बहुत-सी कहानियों में नौकरों के किरदार[vii] नज़र आते हैं। कमज़ोर लाचार नौकर, झूठे, मक्कार और चालबाज़ नौकर, मेरी कहानियाँ नौकरों से भरी पड़ी हैं। मेरी 'महदूद'

दुनिया में तबक़ाती तफ़रीक[viii] नौकर और आक़ा के रिश्ते में नज़र आई। इसने मुझे मुतास्सिर[ix] किया।"[6] 'इसका कारण वे ऊँच-नीच, जात-पाँत को नहीं बल्कि अमीरी-ग़रीबी को ही मानती हैं....

हिन्दू-मुस्लिम आज की ज्वलन्त समस्या है। स्वाभाविक है कि इससे भी आपबीती लिखते समय इस्मत को दो-चार होना पड़ा। उन्होंने बचपन से देखा और यह अनुभव किया कि हिन्दू-मुसलमान ऊपर से खूब मिलते-जुलते हैं लेकिन वे एक-दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न जरूर हैं। इसका उल्लेख वे अपनी आत्मकथा में स्थान-स्थान पर बार-बार करती हैं। इस्मत अपने बचपन के एक वाक़िए का उल्लेख करती हैं। जिसने उन्हें बहुत मुतास्सिर किया था। "वालिद काफ़ी रौशनख्याल थे। बहुत से हिन्दू ख़ानदानों से मेल-जोल था, यानी एक ख़ास तबक़े के हिन्दू-मूसलमान निहायत सलीक़े से घुले-मिले रहते थे। हम काफ़ी छोटे थे जब भी एहसास होने लगा था कि हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे से कुछ न कुछ मुख़ालिफ़[x] ज़रूर हैं ज़बानी भाईचारे के प्रचार के साथ-साथ

पाद टिप्पणी : (i) 'गुबारे-कारवाँ' शीर्षक का अर्थ है—समय के ग़बार में उस पार मौजूद भूले-बिसरे क्षणों को याद करने की बेचैनी। (ii) वर्ग (iii) बड़ी संख्या (iv) सीमित (v) अधीन (vi) कम अक्ल (vii) पात्र (viii) वर्गभेद (ix) प्रभावित (x) भिन्न

एक तरह की एहतियात का एहसास होता था। अगर कोई हिन्दू आए तो गोश्त-वोश्त का नाम न लिया जाए, साथ बैठकर एक मेज़ पर खाते वक्त भी ख़्याल रखा जाए। कि उनकी कोई चीज़ न छू जाए। सारा खाना दूसरे नौकर लगाएँ, उनका खाना पड़ोस का महाराज लगाए।''[7]

वैसे तो हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे पर जान छिड़कने को तैयार रहते थे लेकिन विशेष अवसरों पर सावधानी बरती जाती थी, जैसे, बक़रीद के दिन सूशी ताले में बंद कर दी जाती थी। बकरे अहाते के पीछे टट्टी खड़ी करके काटे जाते। कई दिन तक गोश्त बँटता रहता। उन दिनों इस्मत के घर से, लालाजी का नाता टूट जाता। उनके यहाँ भी जब कोई त्योहार होता तो इस्मत पर पहरा बिठा दिया जाता। इस्मत को भी समझाया गया कि बुतपरस्ती[i] गुनाह है। इस्मत को ऐसे माहौल में एक घुटन-सी महसूस होती थी। वह सोचती कि ऐसे माहौल में हिन्दू-मुस्लिम एकता, कैसे क़ायम रह सकती है। ये विचार तो हिन्दू-मुसलमान को तोड़ सकते हैं जोड़ नहीं सकते। वह चाहती थी कि हिन्दू-मुसलमान, एक-दूसरे के धर्म का सम्मान करें। इसीलिए उन्होंने हिन्दू माइथालोजी का गहराई से अध्ययन किया। इस सन्दर्भ में उनका मानना है कि ''मैं मुसलमान हूँ, बुतपरस्ती शिर्क[ii] है। मगर देवमाला[iii] मेरे वतन का विरसा[iv] है। इसमें सदियों का कल्चर और फ़लसफ़ा। समोया हुआ है। ईमान अलाहदा है, वतन की तहज़ीब अलाहदा है। इसमें मेरा बराबर का हिस्सा है जैसे उसकी मिट्टी, धूप और पानी में मेरा हिस्सा है। मैं होली पर रंग खेलूँ, दीवाली पर दिए जलाऊँ तो क्या मेरा ईमान मुतज़लज़ल[v] हो जाएगा? मेरा यक़ीन और शऊर[vi] क्या इतना बोदा है, इतना अधूरा है कि रेज़ा-रेज़ा[vii] हो जाएगा।''[8]

इस आत्मकथा का मुख्य उद्देश्य है, कुलीन मुस्लिम परिवारों में नारी-स्थिति को रेखांकित करना। वे स्वयं भी अर्द्धसामन्तीय परिवार से थीं। इस समय के ज़्यादातर अर्द्ध सामन्तीय परिवारों में लड़कियों को उच्च शिक्षा न देकर मात्र सिलाई-कढ़ाई सिखाना और थोड़ी बहुत मज़हबी शिक्षा देना ज़रूरी समझा जाता था। इस्मत ने यह महसूस किया कि इस प्रकार के माहौल में, विशेष रूप से एक स्त्री के लिए स्वाधीन और उन्मुक्त जीवन बिताना दिवास्वप्न की भाँति हैं यहीं से उनमें विद्रोह के बीज पनपने लगे जिसने उन्हें एक बाग़ियाना सोच के कथाकार के रूप में जन्म दिया।

अलीगढ़, बरेली के बाद राजस्थान में स्त्री जीवन की कुछ भिन्न समस्याओं से उनका परिचय हुआ। यहाँ उन्होंने बाल-विधवाओं की दुर्दशा देखी। उनके शापमय जीवन से वे उद्वेलित हुईं। यही कारण है कि सभी कहानियों के बीच से एक विद्रोही और उद्धत स्त्री का बिम्ब उभरता है। इस दृष्टि से 'दोज़ख़ी' 'बच्छो फूफी' 'लिहाफ' और 'जड़ें' आदि कहानियाँ महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। 'दोज़ख़ी' के नायक अज़ीम भाई और 'बच्छो फूफी' का ज़िक्र उनकी आत्मकथा में भी आता है। 'बच्छो फूफी' का चरित्र अपने भीतर एक ज्वालामुखी समाहित किए हुए हैं। यह उनकी सगी फूफी थीं। 'अधूरी औरत' शीर्षक के अन्तर्गत 'बच्छो फूफी को खूब याद किया गया है।

तीस-चालीस के दशक में न केवल उर्दू में बल्कि विश्वसाहित्य में नारीवाद जैसा कोई आन्दोलन न था। इस दौर में भी इस्मत ने स्त्री के दोयम दर्जे की नागरिक होने के खिलाफ आवाज़ बुलन्द की। राजस्थान की स्मृतियों के बहाने सामन्तीय जीवन-पद्धति पर तीखी चोट की गई हैं 'सोने का उगालदान' इसकी जीती-जागती मिसाल है। यह शीर्षक, आभिजात्य के अहं को लेकर इस्मत की तीव्र घृणा को व्यक्त करता है यहाँ नारी की स्थिति और भी दयनीय थी। वे महलों में रहती हुई भी सुख-सुविधाओं से वंचित थीं। इसकी वे स्वयं भी शिकार बनी थीं लेकिन अपनी सूझ-बूझ एवं साहस से उन्होंने स्वयं को और अपनी भतीजी को बचा लिया था। नवाबों के महलों में नारी-स्थिति को, लेखिका ने इन शब्दों में व्यक्त किया है..... ''एकदम शाहीमहल की दीवारें मेरा दम घोंटने लगी। ये नवाब लोग तलाक़ के क़ायल नहीं, बस जहर दिलवा देते हैं—अगर औरत चीं चपड़ करें।''[9] इन पंक्तियों को पढ़कर चतुरसेन शास्त्री की 'दुखवा कासे कहूँ सजनी मोर' कहानी की याद ताज़ा हो आती है।

इस्मत ने जिस समय लिखना प्रारम्भ किया, उस समय कुलीन मुस्लिम परिवारों की औरतों का पढ़ना-लिखना, कविता करना या उपन्यास-कहानी लिखना वर्जित था—ऐसे माहौल

पाद टिप्पणी : (i) मूर्तिपूजा (ii) अल्लाह की जात में किसी को शरीक करना जो पाप है (iii) पुराण माइथालोजी (iv) धरोहर (v) कंपायमान (vi) चेतना (vii) टुकड़े-टुकड़े

में इस्मत ने साहसपूर्वक मध्यवर्गीय मुस्लिम-समाज के यौन-जीवन की झांकियाँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने पहली बार घरेलू औरतों के सेक्स-फ्रेस्टेशन पर खुलकर लिखा। इनकी कहानियों में सेक्स एक सामाजिक निषेध के रूप में मिलता है। उन्होने सेक्स को लेकर मूल्यहीन-स्वच्छन्दता की वकालत नहीं की बल्कि उनका विचार था कि सेक्स के निषेध से पैदा हुई नारी-जीवन की विसंगतियों पर खुलकर बात होनी चाहिए। इस कथ्य पर उनकी सर्वाधिक चर्चित कहानी 'लिहाफ' है। इसमें अर्द्धसामन्तीय परिवेश में अपने नवाब पति के प्रेम से वंचित एक स्त्री की व्यथा-कथा कही गई है। इसका ज़िक्र उन्होंने उन ब्याहताओं के नाम' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। इस पर अश्लीलता का अरोप लगाया गया था। और 1944-45 में लाहौर की अदालत में उन पर मुकदमा भी चलाया गया था। इस सन्दर्भ में मुकदमे के कुछ अंश उद्धृत हैं....''लिहाफ को फुहश[i] साबित करने वाले हमारे गवाह, हमारे वकील की जिरह से कुछ बौखला से रहे थे। कहानी में कोई लफ्ज़ क़ाबिले-गिरफ्त[ii] नहीं मिल रहा था। बड़े सोच-विचार के बाद एक साहब ने फरमाया कि ये जुमला. ....'' आशिक़ जमा कर रही थी, फुहश है।''

''कौन-सा लफ्ज़ फुहश है? जमा या आशिक़?'' वकील ने पूछा।

''लफ्ज़ आशिक।'' गवाह ने ज़रा तकल्लुफ से कहा।''

''माई लार्ड, लफ्ज़ आशिक बड़े-बड़े शुअरा[iii] ने बड़ी फरावानी[iv] से इस्तेमाल किया है। इस लफ्ज़ को अल्लाहवालों ने बड़ा मुकद्दस[v] मुक़ाम दिया है।''

''मगर लड़कियों का 'आशिक' जमा करना बड़ी मायूब[vi] बात है।'' गवाह ने फरमाया।

''क्यों''?

''इसलिए, क्योंकि—ये शरीफ लड़कियों के लिए मायूब बात है।''

''मेरी मुवक्किल ने उन लड़कियों का ज़िक्र किया है जो शरीफ नहीं होंगी। क्यों साहब, बक़ौल आपके, ग़ैर-शरीफ लड़कियाँ आशिक जमा करती हैं।''?

''जी हाँ''।

''उनका ज़िक्र करना फ़ुहाशी[vii] नहीं। मगर एक शरीफ ख़ानदान की तालीमयाफ्ता औरत का उनके बारे में लिखना क़ाबिले मलामत[viii] गवाह साहब ज़ोर से गरजे।

''तो शौक़ से मलामत फ़रमाइए, मगर क़ानून की गिरफ्त के क़ाबिल नहीं।''[11]

मुस्लिम-समाज में इस्मत को लेकर कुछ ऐसे संवाद भी हुआ करते थे....

—''आप इस्मत की कहानियाँ पढ़ते हैं।

—नहीं, बड़ी बेहया औरत है।''

लेकिन इस्मत ने मुस्लिम-समाज की परवाह किए बिना धर्म और सेक्स पर खुलकर लिखा। इस्मत ने अपनी आत्मकथा में नारी सम्बन्धी अन्य समस्याओं का ज़िक्र करते हुए उनकी शिक्षा की ज़ोरदार वकालत की है। इस सम्बन्ध में उनका मानना था कि नारी को अपने मूलभूत अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। इसके लिए भले ही उसे परिवार और समाज से विद्रोह ही क्यों न करना पड़े। इस विचार को उन्होंने कथनी के रूप में ही नहीं बल्कि अपने ही परिवार में शिक्षा के लिए पिता से विरोध करके, करनी के रूप में साकार किया।

जब उनके पिता, सूरत (राजस्थान) में जज के पद पर नियुक्त हुए तो भाइयों को पढ़ने के लिए अलीगढ़ में ही छोड़ दिया गया पर उनकी पढ़ाई पर किसी ने ध्यान देना ज़रूरी न समझा। उनमें पढ़ाई के लिए एक अज़ब जज़्बा एवं जुनून था। इसके लिए वे बड़े सा बड़ा त्याग करने को तैयार थीं।

एक दिन उन्होंने अपनी योजना अब्बा (पिजाजी) के सामने रखी कि मैट्रिक करने के लिए वे अलीगढ़ जाना चाहती हैं इसी को लेकर इस्मत और उनके अब्बा के बीच ज़ोरदार तक़रार हो गई। अन्ततः जीत इस्मत की ही हुई। इस प्रसंग का कुछ अंश यहाँ पर उल्लिखित है.....

''मैं पढ़ने के लिए अलीगढ़ जाना चाहती हूँ.....''
मैंने कह ही दिया।

''मगर ज़रा सोचो, क्या फायदा है। इससे बेहतर है तुम खाना पकाना और सिलाई वगैरह सीखो। तुम्हारी तीनों बहनें कितनी सलीकेमन्द हैं और तुम''

''तुम अलीगढ़ नहीं जाओगी।''

पाद टिप्पणी : (i) अश्लील (ii) आपत्तिजनक (iii) शायरों (iv) बहुतायत (v) पवित्र (vi) ऐबवाली (vii) अश्लीलता (viii) बुरा भला कहना

"तो मैं खुद चली जाऊँगी।" मेरे ऊपर भूत सवार हो गया।"

"कहाँ चली जाओगी?"

"हाँ, घर से निकलकर तांगा लूँगी। वहाँ से स्टेशन जाकर किसी भी डिब्बे में बैठ जाऊँगी।"

"फिर"

"किसी भी स्टेशन पर उतरकर मिशन स्कूल का पता पूछती पहुँच जाऊँगी। वहाँ ईसाई हो जाऊँगी। वहाँ मुझे जितना चाहूँगी पढ़ने का मौक़ा मिलेगा।"[12] इस्मत की ज़िद के आगे उनके पिता को झुकना पड़ा औरआखिरकार वे अलीगढ़ गईं। वहाँ जाकर पापा मियाँ, आलाबी द्वारा निर्मित 'गर्ल्स कॉलेज' में दाखिला लिया। इस्मत को यहाँ पढ़ाई-लिखाई का एक अच्छा वातावरण मिला। इसी कारण वे अपनी आगे की पढ़ाई को अच्छी तरह सम्पन्न कर सकीं।

प्रस्तुत आत्मकथा में इस्मत के व्यक्तित्व की कुछ और विशेषताएँ भी उजागर होती हैं। जैसे कि उन्हें किताबों से बेहद लगाव था। उन्होंने 'हार्डी', 'ब्रांटी', सिस्टर्ज़' 'बर्नाड शॉ', 'चेखव' आदि के साहित्य का गहन अध्ययन किया। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं—"ज़िन्दगी में सबसे ज़्यादा मुझे किताबों ने मुतास्सिर किया है। मुझे हर किताब से कुछ-न-कुछ मिला है, अपनी ज़्यादातर उलझनों का जवाब उनमें ही ढूँढ़ा और पाया है। किताबें क़रीबतरीन[i] दोस्त और ग़मगुसार[ii] साबित हुई है। हज़ारों महरूमियाँ, तारीक़ियाँ[iii] इन्हीं दोस्तों के सहारे झेली है। हर किताब के मुसन्निफ़[iv] को मैंने एक क़िस्म का रिश्तेदार महसूस किया है।।[13]

उनके व्यक्त्वि की दूसरी विशेषता यह थी कि वे बहुत बातूनी थीं। लेकिन उनकी बातें कोरी बातें नहीं होती थीं बल्कि इससे वे बहुत कुछ सीखती भी थीं। जैसे कि 'रशीद जहाँ', 'सूफिया जॉनिसार', सलमा सिद्दीकी, सआदत हसन और अलीसरदार जाफरी जैसे चोटी के साहित्यकारों से उनकी बातचीत होती रहती थी। हिन्दी लेखकों में उन्होंने 'डॉ. रामविलास शर्मा' और मोहन राकेश से बातचीत का भी उल्लेख किया है।

उर्दू साहित्य में बाग़ी मुस्लिम लेखिकाओं में रशीद जहाँ का सर्वोपरि स्थान है। उनकी कहानियों का केन्द्रबिन्दु औरत है। उन्होंने औरत के पूरे व्यक्तित्व और समाज में उसकी स्थिति को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। रशीद जहाँ के कहानी-लेखन एवं विचारों से इस्मत इतना प्रभावित हुई कि उन्होंने रशीद जहाँ को अपना गुरु मान लिया। इस्मत 'फ़न और शख़्सियत' के 'आपबीती' नम्बर में लिखती हैं—"जो लोग रशीद जहाँ से मिल चुके हैं, अगर वह मेरी हीरोइन से मिलें तो दोनों जुड़वा बहनें नज़र आएँगी। क्योंकि अनजाने तौर पर मैंने रशीदा आपा को उठाकर अफ़सानों के ताक़चों[v] में बिठा दिया है कि मेरे तसव्वुर[vi] की दुनिया की हीरोइन वही हो सकती थीं।"[14]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस्मत को बागी लेखिका बनाने में रशीद जहाँ का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वे लिखती हैं "रशीद जहाँ ने मुझे कमसिनी ही में बहुत मुतास्सिर किया था। मैंने उनसे साफ़गोई और ख़ुद्दारी सीखने की कोशिश की।"[15]

कटाक्ष और विनोदप्रियता, इस्मत के व्यक्तित्व का प्रमुख गुण है। वे अपनी बात को सीधे न कहकर टेढ़ी लकीर के रूप में प्रस्तुत करना पसन्द करती थी। उक्ति की यह वक्रता उनके भाषा-संस्कारों में रची-बसी है। परिवार के सदस्यों, स्कूल-कॉलेज के सहपाठियों अध्यापकों व दोस्तों के मध्य हास्य-व्यंग्य के अनेक प्रसंग मिलते हैं। 'अलीगढ़' 'सोने का उगालदान और 'ताले' जैसे शीर्षकों में ऐसे सन्दर्भ बिखरे पड़े हैं।

मुसलमानों के धार्मिक अन्धविश्वासों पर व्यंग्य करती हुई इस्मत लिखती हैं—एक देवी जी आरती की थाली लिए सबके माथे पर चन्दन-चावल चिपकाती आई। मेरे माथे पर भी लगाती गुज़र गईं। मैंने फ़ौरन हथेली से टीका छुटाना चाहा, फिर मेरी बदज़ाती आड़े आ गई। सुनते थे, जहाँ टीका लगे उतना गोश्त जहन्नम में जाता है। ख़ैर मेरे पास गोश्त की फ़रावानी[vii] थी, इतना-सा गोश्त चला गया जहन्नम में तो कौन टोटा आ जाएगा।"[16]

जब इस्मत अलीगढ़ में एफ. ए. में पढ़ती थी। वहाँ, उन्हें 'ख़ातून अब्दुल्लाह', 'मुमताज़ अब्दुल्लाह' और मिस

पाद टिप्पणी : (i) ज्यादा क़रीब, ज्यादा पास (ii) हमदर्द, सहानुभूति रखने वाला (iii) अँधेरे, दुख (iv) लेखक (v) ख़ानों (vi) कल्पना (vii) बहुतायत (viii) दब्बूपन से (ix) आदेश

राम' आदि अध्यापिकाएँ पढ़ाती थी। इस्मत ने 'मिस राम' से सम्बन्धित अनेक हास्यपूर्ण प्रसंग लिखे हैं–ऐसा ही एक-प्रसंग है–

"मिस राम अब मेरी कोई क्लास नहीं लेती थीं, सिर्फ गेम्स पर आती थी। खुद उन्हें गेम्स से वहशत होती थी मगर अपनी ड्यूटी बजा लाना फर्ज़ समझती थी। चौथी क्लास से वह मुझे जानती थी और हर शरारत मेरे सर चिपका देती थीं।

लड़कियां मेरी तरफ से सफ़ाई पेश करतीं, मैं खुद बेगुनाही के सुबूत मुहैय्या करती मगर वह बड़ी लिज़ाजत[i] से कहतीं, प्लीज़, कोने में बैठ जाइए।" मैं तंग आकर[ii] हथियार डाल देती। थोड़ी देर बाद वह अपने अहकाम[ix] भूलकर मुझे सीढ़ियों पर बेकार बैठा देखकर आग बबूला हो जातीं।

"आप गेम में हिस्सा क्यों नहीं लेते? बस हर वक्त खाली बैठे रहते हो।"

मैं उन्हें क़त्तई याद न दिलाती कि उन्होंने खुद सज़ा देकर बिठाया है, और फ़ौरन खेल में शरीक हो जाती।[17]

इस्मत ने इस रचना में अपने जीवन, परिवेश के विविध प्रसंगों, पहलुओं और विचारों को यथासम्भव अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'काग़ज़ी है पैरहन' की भाषा के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि इसमें भाषा का स्वाभाविक, सरल एवं सहज रूप विद्यमान है। ऐसा लगता है कि लेखिका अपने पाठकों से संवाद कर रही है....उन्हें एहसास होता है कि पाठकगण उनके विचारों को सुन रहे हैं, हँस रहे हैं, गुस्सा हो रहें हैं। लेखिका की यही सोच उनको लेखन की ओर प्रेरित करती रहती है।....लेखिका के शब्दों में....

"लिखते हुए मुझे ऐसा लगता है जेसे पढ़नेवाले मेरे सामने बैठे हैं, उनसे बातें कर रही हूँ और वे सुन रहे हैं कुछ मेरे हमख़्याल हैं, कुछ मोतरिज़[iii] हैं, कुछ मुस्कुरा रहे हैं, कुछ गुस्सा हो रहे हैं। कुछ का वाक़ई जी जल रहा है। अब भी मैं लिखती हूँ, तो यही एहसास छाया रहता है कि बातें कर रही हैं।"[18]

प्रश्न उठता है कि इसे आत्मकथा कहा जाए या आत्मकथात्मक उपन्यास कहा जाए। आजकल (उर्दू) की पाँचवीं और बाद की एक दो किस्तों में इसे धारावाहिक उपन्यास कहा गया है, लेकिन मेरे विचार से इसे आत्मकथात्मक उपन्यास नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कथानक में क्रम नहीं है जबकि आत्म-कथात्मक उपन्यास में एक क्रम होना ज़रूरी है। लेखिका स्वयं इसके प्रति सचेत थी कि वे कोई उपन्यास नहीं लिख रही हैं बल्कि अपने अतीत का अवलोकन कर रहीं हैं उससे आत्मसाक्षत्कार कर रही हैं।

इस्मत लिखती हैं–"मैं अपनी याददाश्त और ख़ानदान के लोगों की ज़बानी सुनी-सुनाई बातों को, जिन्होंने मुझे प्रभावित किया और हर एक तबक़े की उलझनों, नए सवालों और उनके हल की समस्याएँ अज़ीब उलझी हुई-सी चीज़ हैं।"[19]

उक्त वक्तव्य से भी यह प्रमाणित होता है कि यह आत्मकथा ही है, आत्मकथात्मक उपन्यास नहीं। वारिस अल्वी का कहना उचित जान पड़ता है।

"काग़ज़ी है पैरहन" इस्मत चुग़ताई की यादों की बारात है।"[20]

'काग़ज़ी है पैरहन' आपबीती का हिन्दी में लिप्यांतरण किया गया है अर्थात् उर्दू में लिखी इस आपबीती को ज्यों का त्यों हिन्दी में लिख दिया गया है। उर्दू के दुरूह शब्दों के कारण पठनीयता में बाधा अवश्य उपस्थिति होती है लेकिन उन शब्दों का हिन्दी में अर्थ दे देने से सारी मुश्किलें हल हो सकती हैं।

इस आत्कथा में लेखिका, भारतीय नारियों को यह सन्देश एवं प्रेरणा देती हुई दिखाई देती है कि....तुम साहसी हो और दृढ़ इच्छाशक्ति वाली हो....तुम अपने अधिकारों के प्रति सजग हो...अपने मौन को तोड़ो। अपनी आवाज़ बुलन्द करो। आगे बढ़ो...आगे बढ़ें और समाज को बदल डालो–बदल बदल-डालो।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इस्मत ने अभिव्यक्ति के सारे संकट झेले लेकिन इन्होंने न कोई समझौता किया न भयभीत हुई। जीवनपर्यन्त अपनी बात बहुत कलात्मक ढंग से कहती रहीं इस्मत के लेखन में कला एवं विचार का अद्भुत समन्वय है।

पाद टिप्पणी : (i) दब्बूपन से (ii) आदेश (iii) आपत्ति करने वाले

सन्दर्भ

1. इस्मत चुग़ताई! काग़ज़ी है पैरहन अन्तिम पृष्ठ पर दी गई सूचना के आधार पर लिप्यांतरण (इफ्तिख़ार अंजुम)
2. वही, अतिन्म पृष्ठ पर दी गई सूचना के आधार पर।
3. इस्मत चुग़ताई : काग़जी है पैरहन : पृ. 266
4. वही, पृ. 266
5. वही, पृ. 8
6. वही, पृ. 8
7. वही, पृ. 10
8. वही, पृ. 22
9. वही, पृ. 177
10. वही, पृ. 37-38
11. (सम्पादक) राजेन्द्र यादव : हंस : अगस्त 2003 : पृ. 132
12. इस्मत चुग़ताई : काग़ज़ी है पैरहन : पृ. 110-111
13. वही : पृ. 18
14. (सम्पादक) कुँवरपाल सिंह : वर्तमान साहित्य : अगस्त 2005 : पृ. 33
15. इस्मत चुग़ताई : कागज़ी है पैरहन : पृ. 15
16. वही, पृ. 11
17. वही, पृ. 132
18. 'काग़ज़ी है पैरहन' आपबीती के फ्लैप से उद्धृत।
19. जानकी प्रसाद शर्मा : उर्दू साहित्य की परम्परा : पृ. 137
20. वही, पृ. 139

Hotel Compal

Opp. Kala Academy, Campal, Panjim, Goa & 403 001 INDIA.
Tel : (Reception) (0832) 2224533
Tel/Fax : (0832) 2224531

MICHAEL & MICHAEL

Off : Cardose Bidg. 3rd Floor.
T-2, A-Block, Nr. Kadamba bus Terminus, Panaji-Goa.
Tel : Off : 91 (0832) 2438855 / 2438554
Fax : 91 (0832)2438554

Factory : opp. E-Merk
Usgao, Ponda, Goa. (India)
Tel : 91 (0832) 2344284
Cell : 9822100719
Res : 2463621 / 2463721